

हिन्दी भाषा और वंचित समाज की अस्मिता

डॉ.सुनीता

सहायक प्राध्यापिका

हिन्दी विभाग

राजा सिंह महाविद्यालय सीवान

शोध सार:- हिंदी पूरे भारत में बोली जाने वाली भाषा है। यह पालि-प्राकृत, संस्कृत से विकसित हुई है। इसके विकास में बोलियों के साथ-साथ विदेशी भाषाओं का भी हाथ है। हिन्दी भाषा की लोकोक्तियों की संरचना, दलितों के प्रति हिन्दी भाषी समाज की मानसिकता को दर्शाती है। कई लोकोक्तियों द्वारा दलित समाज को कमतर, दोयम दर्जे का दिखाया गया है। अन्य भाषा के शब्दों को स्वयं में समाहित करके ही हिन्दी जीवित रह सकती है।

बीज शब्द:- हिन्दी, पालि-प्राकृत, संस्कृत, कमजोर, स्त्रीलिंग, मजबूत, पुल्लिंग, दलित, लोकोक्तियाँ, ब्राह्मण, शूद्र, शब्द भंडार, हिन्दी का विकास, शुद्धता, मतप्रायः।

शोध आलेख:- हिंदी का विकास लगभग 1000 ई० से माना जाता है। हिंदी का उद्भव अपभ्रंश से हुआ। भाषा के विकास में संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-पुरानी हिंदी-हिंदी, इस क्रम को माना जाता है। परंतु अब कुछ शोध इस विषय पर किये जा रहे हैं, कि पालि-प्राकृत को संस्कारित करके संस्कृत बनी है। बापू राउत लिखते हैं- “कुछ ब्राह्मण विद्वानों ने मान लिया है कि संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत और प्राकृत से आज की भाषाओं का विकास हुआ। लेकिन पालि में संस्कृत का कोई शब्द नहीं है। संस्कृत के शब्द प्राकृत में भी नहीं मिलते। यदि संस्कृत पाली से पहले की लोकभाषा होती, तो संस्कृत शब्द पालि और प्राकृत में शामिल हो गए होते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ है। इसके विपरीत आज कुछ लोकप्रिय भाषाओं में संस्कृत के शब्द आते हैं। इससे साबित होता है कि संस्कृत आधुनिक भाषा है।”¹ अमित शांडिल्य लिखते हैं- “सिंधु मुहरो और आदिवासी गुफाओं में उत्कीर्ण लेखों के अलावा, भारतीय लेखन के सबसे पुराने नमूने, जो हमें ज्ञात हैं, अशोक के शाही शिलालेखों से आते हैं। ये शिलालेख पाली, अरामी और यहाँ तक कि ग्रीक में भी हैं। लेकिन संस्कृत में नहीं। यह लगभग 260 और 232 ईसा पूर्व के बीच का है। लेकिन संस्कृत को प्रदर्शित करने वाला पहला नमूना, जैसा कि पारंपरिक रूप से (लेकिन गलती से) माना जाता है, लगभग 150 ईस्वी में जूनागढ़ में रुद्रदामन के शिलालेख के साथ ही मिलता है। लिखित प्राकृत और लिखित संस्कृत के बीच लगभग चार सौ साल का अंतर है।”² संस्कृत से पालि-प्राकृत बनीं, या पालि-प्राकृत से संस्कृत यह विषय शोधरत है। चौरासी सिद्धों में अधिकांश इसी विश्वविद्यालय के छात्र और शिक्षक थे, जिनमें अधिकांश शूद्र थे। “ऐसे में नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों में सुरक्षित और संरक्षित प्राकृत और अपभ्रंश की लाखों पुस्तकों पर विचार करने की जरूरत है, जो जैन-बौद्ध की ही नहीं, शूद्रों की भी संपदा थी। इन्हें बेरहमी से जला दिया गया। अपभ्रंश भाषा में लिखे सिद्ध और नाथ साहित्य भी नालंदा विश्वविद्यालय की धरोहर थे। डोम्भीप्पा तो जाति के डोम ही थे। प्रमुख सिद्ध-संतों में सरहप्पा, लुइप्पा, शबरप्पा, कणहप्पा, भुसुकप्पा, कवणप्पा, कम्बलप्पा, गुंडरिप्पा, जालन्धरिप्पा, दारीकप्पा, धामप्पा थे, जिनके लिखे मोटे-मोटे ग्रंथ थे, उनके अंश आज भी उपलब्ध हैं।”³ परंतु यह तो निश्चित है कि, शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिम हिंदी, और अर्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिंदी का विकास हुआ है। पश्चिमी हिंदी में खड़ी बोली, हरियाणवी, ब्रज भाषा, कन्नौजी और बुंदेली शामिल है। पूर्वी हिंदी में अवधी, बघेली और

छत्तीसगढ़ी। आज हम लोग जो हिंदी बोलते हैं, वह इन्हीं सब बोलियों का मिला जुला विकसित और परिष्कृत रूप है। दलित साहित्य शब्द हिंदी में 80 के दशक से आया। इसकी पृष्ठभूमि मराठी दलित साहित्य रहा। 90 के दशक में दलित साहित्य प्रचलित हुआ।” जब किसी वर्ग विशेष से कोई रचनात्मक व्यक्ति साहित्य में प्रवेश करता है, तो वह अकेला प्रवेश नहीं करता है, उसके साथ उसका पूरा परिवेश, संस्कार और समाज साहित्य में प्रवेश करता है। इसलिए जब दलित साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया, उनके साथ दलित बस्तियों के परिवेश और माहौल ने भी उन्हीं की भाषा में साहित्य में प्रवेश किया। जिस प्रकार के दग्ध अनुभव दलित साहित्यकारों को हुए, उनकी अभिव्यक्ति के लिए वैसी ही दग्ध भाषा का भी प्रयोग दलित साहित्यकारों ने किया।”⁴ जब हम किसी भाषा को किसी अस्मिता से जोड़ते हैं, तब उस भाषा की संरचना, व्याकरण, शब्द भंडार, इत्यादि पर भी विचार करना आवश्यक है। हिंदी में मध्यम पुरुष एक वचन के तीन रूप हैं- आप, तुम और तू। यह स्त्रीकरण को दर्शाता है। अंग्रेजी में इसके लिए “यू” का प्रयोग होता है। पंजाबी में “तुस्सी” का। हिंदी में दो लिंग का प्रावधान है। यहाँ संजीव तो सजीव, निर्जीव भी स्त्री या पुरुष हैं। नदी स्त्री है, तो सागर पुरुष। लता स्त्री है, तो वृक्ष पुरुष। आप चाहें तो इनके पर्यायवाची शब्दों की भी जाँच कर सकते हैं। नदी, सरिता, तटिनी, तरंगिणी। सागर, समुद्र, जलधि, रत्नाकर। लता, बेल, वल्लरी। वृक्ष, पेड़, दरख्त, द्रुम। जबकि कई अन्य भाषाओं में निर्जीव वस्तुओं का कोई जेंडर नहीं है। यहाँ से हमें हिंदी भाषा, या यूँ कहें कि हिंदी भाषी समाज की विचारधारा ज्ञात होती है। तुलनात्मक रूप से कमजोर और कोमल को स्त्रीलिंग, और मजबूत या कठोर को पुल्लिंग बनाया गया है। “भाषा के व्याकरण में व्याप्त ‘लिंग’ नामक अवधारणा सदियों से समाज में चल रहे स्त्री-पुरुष मूलक विभेद-भावना का प्रतिबिंब है, पर साथ ही (जैसा कि समाज में रहा है, वैसा ही) पुल्लिंग का वर्चस्व भी स्त्रीलिंग पर दिखाती है। यानी, पुल्लिंग के सामने स्त्रीलिंग को दोयम दर्जे का सिद्ध मान कर, ‘लिंग’ (जेंडर) नामक अवधारणा खड़ी हुई है। किसी भाषा में मुख्यतः रूप-रचना (शब्द-रूप और धातु-रूप / क्रिया की रचना) और गौणतः शब्द-रचना (व्युत्पत्ति) में लिंग की भूमिका प्रभावी रहने से मानना होगा कि उस भाषा में लिंग-भेद है। इस नजरिए से तो हिंदी में लिंग-भेद बहुत मजबूत अवस्था में है। हिंदी भाषा और उसके व्याकरण के पुरुषवादी होने के ढेर सारे संकेत हैं।”⁵ किसी भाषा के मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ उसे समृद्ध करते हैं। इसके साथ ही उस समाज की संरचना को भी दर्शाते हैं, जो उस भाषा को बोलता है। हिंदी की लोकोक्तियाँ बहुत कुछ बयाँ करती हैं। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. जयप्रकाश कर्दम के अनुसार “मुहावरे लोकोक्तियाँ और कहावतें समाज की चेतना की अभिव्यक्ति हैं। लोग क्या सोचते हैं, एक दूसरे के प्रति उनकी किस तरह की मानसिकता और व्यवहार है, मुहावरे और कहावतों में यह बहुत स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है। सामाजिक यथार्थ की बहुत सारी अंदरूनी परतें मुहावरे और कहावतों के माध्यम से खुलती हैं।”⁶ हिंदी भाषी समाज में दलित वर्ग की जो स्थिति है, वह कुछ उदाहरणों द्वारा समझी जा सकती है। चोरी चमारी- चोरी करना निश्चित ही एक बुराई है।

परन्तु इसके साथ एक जाति विशेष का नाम जोड़ना उसके प्रति समाज की मानसिकता को दर्शाता है।

चांडाल चौकड़ी- जाति विशेष को षड्यंत्र करने वाला बताया जा रहा है। चमार की बेटी का नाम राजरानी- यह लोकोक्ति यह दर्शाती है कि जाति विशेष के बच्चों के नाम भी हीनभावना से भरे, घृणास्पद होने चाहिए।

ठाकुर सुहाती करना - अर्थात एक जाति विशेष को जी हजूरी करवाना ही पसंद है।

अपने घर में सब ठाकुर- यह लोकोक्ति एक जाति को पूरे गाँव का मालिक बता रही है।

उल्टे उस्तरे से मूड़ना- अर्थात जाति विशेष के लोग धूर्त होते हैं, और धोखा देते हैं।

चना लगाना- यह लोकोक्ति पान बेचने वाले पूरे समुदाय को धोखेबाज सिद्ध करती है।

इसी प्रकार की अनेक लोकोक्तियाँ हैं जो हिन्दी भाषी समाज में विभिन्न जातियों की स्थिति दर्शाती हैं। “साल में एक बार चमार पिटा सही, बनिया लुटा सही”, “नर में नाई, पखेरू में काग, जल में कछुआ, तीनों दगाबाज”, “अहीर, गड़ेरिया, पासी, तीनों सत्यानासी”, “हरवाह, चरवाह को कुएँ का पानी”, “कहे सुने से ठाकुर माने, बाभन माने खाय, लिए दिए से वैश्य माने, सूद्र माने लतियाये”, “काला बाभन, गोरा सूद्र, इन दोनों से काँपे रूद्र”, ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो हिन्दी पट्टी में दलितों वंचितों की स्थिति को दिखाते हैं।

हर भाषा का समाजशास्त्र उसे व्यवहार में लाने वाले समाज की व्याख्या करता है। हिन्दी साहित्य में कबीर, रविदास, इत्यादि संत कवियों ने जाति के भेद को मिटाना चाहा। आधुनिक काल में प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, इत्यादि ने दलित समाज की व्यथा को बखूबी व्यक्त किया है। 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित कविता “अछूत की शिकायत” को दलित वर्ग द्वारा रचित स्वानुभूति की प्रथम रचना माना जाता है। इस कविता को हीरा डोम ने लिखा था। हालाँकि शीर्षक को छोड़ दें, तो यह पूरी कविता भोजपुरी में है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात दलित वर्ग की पहली पीढ़ी पढ़ लिखकर सरकारी नौकरी में आई। 90 के दशक में आत्मकथाओं के रूप में दलित साहित्य सामने आया। इन आत्मकथाओं ने हिन्दी भाषी समाज का, जातीय भेदभाव वाला वीभत्स चेहरा सामने रख दिया। इन आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिश्वरराय के “अपने-अपने पिंजरे”, ओमप्रकाश वाल्मीकि की “जूठन”, कौशलया वैसंत्री का “दोहरा अभिशाप”, तुलसीराम की “मुर्देहिया” एवं “मणिकर्णिका” इत्यादि प्रमुख हैं। धीरे-धीरे अन्य विधाओं में भी दलित लेखन होने लगा। डॉ. जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास “छप्पर” को प्रथम दलित उपन्यास माना जाता है। प्रारंभ में दलित साहित्य को कूड़ा-कबाड़ा कह कर नकारा गया। परन्तु आज हिन्दी साहित्य में दलित के साथ स्त्री, किन्नर, पर्यावरण, दिव्यांग, वृद्ध, बाल इत्यादि अस्मितामूलक विमर्श केंद्र में आ गए हैं।

हिन्दी भाषा ने स्वयं को लगातार परिमार्जित किया है। आज की हिन्दी सौ साल पहले की हिन्दी से बिल्कुल अलग है। क्लिष्ट शब्दों की बजाय सरल सहज शब्दों का प्रयोग बढ़ा है। आज लगभग पूरे भारत में हिन्दी बोली और समझी जाती है। बेशक लहजा अलग हो, परन्तु कामचलाऊ हिन्दी अधिकांश लोग जानते हैं। इसमें हिन्दी सिनेमा का बहुत बड़ा हाथ है। वस्तुतः हिन्दी की लिपि, व्याकरण संरचना अपनी है, परन्तु इसका शब्द भंडार कई बोलियों (अवधी, ब्रज, भोजपुरी, कन्नौजी, बुंदेली) और कई विदेशी भाषाओं (पुर्तगाली, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी) से समृद्ध हुआ है। जिस प्रकार एक नदी में आसपास की छोटी नदियों, धाराओं, गलियों, बारिश का पानी, गिरता है और उसे विशाल

बनाता है; उसी प्रकार हिन्दी सभी को अपने भीतर समाहित करते जाती है। हिन्दी की इस विशेषता ने ही उसे जीवित रखा है, और आगे भी जीवित रखेगी। शुद्धता की मांग करते हुए अगर हम हिन्दी को खंगालते रहे, तो यह मृतप्रायः हो जाएगी।

संदर्भ सूची:-

01. बापू राउत, “संस्कृत भाषा भारत की पालि और प्राकृत से पुरानी नहीं” <https://www.forwardpress.in>
02. अमित शांडिल्य, “संस्कृत से पहले प्राकृत क्यों?” <https://www.schandillia.com>
- 3 भाषा एवं साहित्य के योगदान में पिछड़ों दलितों का योगदान, हरिनारायण ठाकुर 17 फरवरी 2023 <https://www.forwardpress.in>
- 4 <https://ebooks.inflibnet.ac.in>
- 5 <https://www.jansatta.com>
6. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पुस्तक- लोक साहित्य महत्व एवं प्रासंगिकता, संपादक- डॉ. रामभरोसे, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली। संस्करण- प्रथम (2023) पृष्ठ संख्या- 47
- 7 आलेख में प्रयुक्त लोकोक्तियों को लेखिका द्वारा हिन्दी भाषी क्षेत्रों में सुना गया है।